विकास की अवधारणा में आदिवासी

शम्भुलाल मीणा
व्याख्याता
हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दौसा, राजस्थान

सारांश

आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं। आदिकाल से वे भारत में रहते हुए प्रकृति से जुड़े रहे हैं और जंगलों में गुजर–बसर करके अपना जीवनयापन करते हैं।

आदिवासी की जगह वनवासी शब्द का प्रयोग करना उनका मजाक उड़ाना है। आदिवासी पेड़ों और अपने पूर्वजों की उपासना करते हैं। दाह संस्कार कर वे पूर्वजों की कब्रों या श्मशानों को चिह्नित करने तथा उसकी स्मृति बनाये रखने हेतु उन पर पत्थर लगाते हैं, जिसे ससन कहते हैं। इनकी वे पूजा करते हैं। ससन पर उनके पूरे समाज का, समूह का हक होता है। अपने सुख–दुःख में शामिल होने के लिए उन्हें आमंत्रित करता है।[1]

पिछड़े क्षेत्रों में आदिवासियों का धर्मान्तरण किया जा रहा है, उन्हे बलात् ईसाई बनाया जा रहा है जो देश के सामने महत्त्वपूर्ण चुनौती है।

मुख्य शब्द : वनवासी, दृष्टिपात, वीरांगना, अन्यायग्रस्त

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करे तो पता लगता है कि वैदिक सभ्यता से पूर्व यहाँ आर्यों व अनार्यों में युद्ध हुआ। जिसके फलस्वरूप इन्हें गिरि कुहरों तथा वनों में आश्रय लेना पड़ा। रामायण में शबरी और महाभारत में एकलव्य के प्रति सहानुभूति व आदर केवल दिखावा भर है। स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। गोंडवन में गोंडी साम्राज्य की नींव रखने वाला महान पराक्रमी गोंड राजा कोल भिल्ल तथा उनका पुत्र भीम बल्लाल शहा अपनी वीरता से बावनगढ़ पर कब्जा करके, अंत तक अपने पास रखने वाला पराक्रमी गोंड राजा संग्रामसिंह था। महाराणी वीरांगना दुर्गावती भी आदिवासी थी।

आदिवासी कभी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक वैभव से युक्त थे, परन्तु वर्तमान में लाचार, अन्यायग्रस्त तथा पशुवत जीवनयापन करने वाले व्यक्ति के रूप में पहचान है। वेदना से भरा उनका जीवन है। सूर्यास्त होते ही गिरि कुहरों में उसकी हल–चल बंद हो जाती है। सूर्योदय के साथ भोजन की खोज में वन की सँकरी कटीली पंगडंडियों पर उसके नंगे पैर चलने लगते हैं। दिनभर की भटकन के पश्चात् आई थकान को दूर करने के लिए महफिल लगाई जाती है। उस संगीत महफिल में देहभान भूलकर आदिवासी स्त्री–पुरूष , बच्चे, युवक–युवतियॉ तथा बडे–बूढ़ें सामुहिक रूप से नृत्य करते हैं, गाते हैं और अपने सांस्कृतिक मूल्यों को संजोये रखते हैं। इनका सांस्कृतिक निरालापन ही, उनके समूह जीवन की आधारशिला है।[2]

आदिवासियों की विशिष्ट भाषा, जीवन पद्धति होती है। इनके धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य भी विशिष्ट होते हैं। उनको वनवासी, जंगली, लंगोटिया, भूमिपुत्र, वन–पुत्र, आदि पुत्र के रूप में संबोधित किया गया है। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में उल्लेखित किया है। वास्तव में आदिवासी आर्यों से पूर्व का मनुष्य समूह है। वह इस भूमि का मूल मालिक है। सही अर्थ में वही क्षेत्राधिपति है। गौंड, भील, करेली आदिवासी जनजातियों के बारे में महात्मा ज्योतिबा फूले ने मार्मिक वचन कहे हैः–

गोंड भील क्षेत्री ये पूर्व स्वामी
पीछे आए वहीं इरानी
शूर, भील, मछुआरे मारे गए रारों से
ये गए हकाले जंगलों गिरिवनों में।[3]

संवैधानिक दृष्टि से किसी समुदाय को जनजाति के तौर पर परिभाषित करते समय उसके भौगोलिक अलगाव उसकी विशिष्ट संस्कृति, आदिम विशेषताओं, आम सामाजिक समुदायों से घुलने–मिलने में संकोच और आर्थिक पिछड़ने जैसी बातों का ध्यान रखा जाता है। आदिवासी समाज के भीतर स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता रहती है। अनुसूचित जनजातियों की संख्या 250 से 635 के लगभग बताई जाती है।

लगभग 90 प्रतिशत आदिवासी अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर रहते हैं। भारत की 90 प्रतिशत कोयला खाने, 72 प्रतिशत वन और अन्य प्राकृतिक संसाधन और 80 प्रतिशत अन्य खनिज पदार्थ आदिवासी भूमि पर पाए जाते हैं। 3000 से अधिक जल विद्युत बांध भी इन्हीं क्षेत्रों में बनाये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि भारतीय औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के मूल संसाधन मुख्यतया आदिवासी क्षेत्रों से ही आते हैं। विपुल सम्पदा का एक छोटा सा भाग भी आदिवासियों के हिस्से में नहीं आता। अपनी नदियों और जमीनों पर उनके अविच्छिन्न अधिकार भी दूसरों को दे दिए गए। इसके फलस्वरूप 85 प्रतिशत आदिवासी सरकारी गरीबी रेखा के नीचे रह रहे हैं।

एक ओर आदिवासी जीविका के लिए वनों पर निर्भर है दूसरी ओर सरकारी नीति यह है कि वनों से अधिक आय प्राप्त की जाए। बाजारों में आदिवासी उत्पादनों की बिक्री नहीं कर सकते । सन् 1969 में राष्ट्रीय श्रम आयोग ने आदिवासियों के लिए स्थायी बस्तियों और कृषि अधिकारों का सुझाव दिया। 1977 में मध्यप्रदेश सरकार ने वन गांव के निवासियों को प्रति परिवार 2.5 हेक्टेअर कृषि भूमि पर अधिकार देने का निर्णय लिया। आदिवासी भारत की कुल जनंसख्या का 8. 08 प्रतिशत ही है।

अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं । मरणोपरान्त हम अपनी संस्कृति की विरासत अपनी संतान के लिए छोड़ जाते हैं। आदिवासी संस्कृति जातीय समानता, लिंग समानता, सहभागिता, सहयोगिता, सामूहिकता, भाईचारा और प्रकृति प्रेम है। इनका धार्मिक स्थल खुला आकाश होता है, जहाँ कहीं भी ये अपनी उपासना, आराधना कर सकते हैं। आदिवासियों का धर्म सरना है। धार्मिक आस्थाएँ मनुष्य में आत्मविश्वास जगाती है। किसी समुदाय को आत्म सम्मान के साथ जीने के लिए आत्म विश्वास परमावश्यक तत्त्व हैं।

सामाजिक मनुष्य का प्रत्येक क्रिया कलाप संस्कृति कहलाता है। अपने धर्म से प्रेरित होकर मनुष्य जीता है। अपने सम्पूर्ण जीवन में वह जो क्रियाएँ करता है वह प्रतीक के रूप में संस्कृति और धर्म का प्रतिबिम्ब है। यह संस्कृति मनुष्य को अच्छाई के लिए प्रेरित करती है।

कोई सभ्य, विकसित या प्रभु (डोमिनेंट) जाति अपने से कमजोर जाति का किस तरह नाश करती है इसका उदाहरण पाश्चात्य देशो में नहीं भारत में भी देखने को मिलता हैं।

विकसित जाति के लोग ऐसा वातावरण तैयार करते हैं जिससे कमजोर जाति के लोग हीन–ग्रंथि से ग्रसित हो जाते हैं। फलतः उनका आत्मविश्वास, आत्म गौरव या स्वाभिमान टूटता जाता है और तब वे एक ऐसी स्थिति में पहुँचते है , जहाँ वे यह मान लेते है हैं कि वे वाकई पिछड़े, कमजोर और बुद्धिहीन हैं। तब वे प्रभु–वर्ग के लोगों से मिलकर अपने ही भाई–बन्धुओं का शोषण करते हैं। उन्होने आदिवासी समाज को सामाजिक – राजनीतिक प्रभावों द्वारा इतनी बार कुचला और रौंदा गया है कि हम अपनी उपस्थिति या अस्तित्व के मूल स्रोत को ही भूल बैठे हैं।

आदिवासी साहित्य का अमूल्य भंडार इन भाषाओं के लोकगीतों में है जिनमें हमारी संघर्ष–गाथा, इतिहास, विचार, भावना आदि सुरक्षित है। गरीबी के कारण हम अपनी भावनाओं और विचारों को धारदार और चमकदार बनाने के काम में बिलकुल पिछड़े रहे । फलतः हमारी चेतना भी विकसित नहीं हो पाई । हमें आदिवासी साहित्य को लोकगीतों के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं में भी प्रस्तुत करना होगा।

बिहार, बंगाल और मध्यप्रदेश में लाखों आदिवासी संताली, मुंडा–उराँव व खड़िया भाषाएँ बोलते हैं। इन भाषाओं की उच्चारण पद्धति राज्यों में प्रचलित शिक्षा माध्यम की भाषा–हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी से बिलकुल भिन्न है। इस कारण बच्चों को अध्ययन में परेशानी का सामना करना पड़ता है। कई बार हीन भावना के कारण बच्चे बीच में ही अध्ययन छोड़ देते हैं। कई बार शिक्षक से अपमानित भी होना पड़ता है। तुम गधे लोग, कोल के कोल ही रहोगे । ओल सीझे, न कोल बूझे। निश्चय ही इससे बच्चों का आत्म सम्मान चकनाचूर हो जाता है। भाषा की राजनीति में उलझाए जाने पर ही हम अपने घर, खेत, खलिहान खोने को विवश हैं। यदि न्याय की भाषा हमारी अपनी मातृभाषा होती तो आज हम जमीन से इतना अधिक बेदखल नहीं होते।

हिन्दी लेखकों ने आदिवासी स्त्रियों को हमेशा बलात्कार का शिकार होते दिखाया है क्या सभ्य समाज के लेखकों के इस दृष्टिकोण का विरोध नहीं होना चाहिए ? एक आदिवासी लड़का किसी उच्च जाति की लड़की से विवाह करे तो उसकी संतान उच्च जाति की कहलायेगी किन्तु आदिवासी लड़की उच्च जाति के लड़के से विवाह करेगी तो उसकी संतान आदिवासी कहलायेगी। यह कानून हमारे अधिकारों पर सीधा प्रहार है।

आदिवासियों ने ही इस धरती को अपनी मेहनत के बल पर खेती लायक बनाया है। किन्तु सभ्य लोगों ने ही उन्हें जमीन से खदेड़ने का प्रयास किया है। उन्हीं से हमें अपनी जाति की पहचान के लिए जाति प्रमाण–पत्र लेना पड़ रहा है। आज भी एक खेतिहर मजदूर को अकुशल श्रमिक मानते हैं ? क्यों खेतिहर मजदूर में कोई कुशलता नहीं होती ? सभ्य समाज द्वारा निरक्षर व्यक्ति को अकुशल बुद्धू, गँवार, जंगली समझा जाता है। आदिवासियों पर कितनी तरह के जुल्म किए जा रहे हैं। भाषा, संस्कृति, जमीन, बहू–बेटी तक उनसे छीने जाने की साजिश रची जा रही है, फिर भी वे चुप हैं। नीग्रों कवि सिकी सेपाम्ला की तरह कहना होगा–

''अश्वेत लोग पैदायशी गायक होते हैं
अश्वेत लोग पैदायशी धावक होते हैं
अश्वेत लोग चाहते हैं – अमन–चैन
ये सारे मिथक हमें बनाये रखते हैं भोला–भाला।

X X X X X X

हम छटपटाते हैं अपने अपमान की पीड़ा में
गायक, धावक, शांति प्रेमी कोइ देखता नहीं''

हमारे भीतर धुमड़ते तूफान को कोई नहीं जानना चाहता कि हम अपने ही रसातल तक पहुँच गए हैं। [4] आज आदिवासियों की सुरक्षा के कानूनी एवं संवैधानिक प्रावधान को कमजोर करने हेतु हिन्दू धर्म का प्रयोग एक

हथियार के रूप में किया जा रहा है। सच तो यह है कि वास्तविक जीवन में हिन्दू समाज में आदिवासियों के लिए कोई भी सम्मानजनक स्थान नहीं है। आदिवासी अपने धर्म को श्सरनाश (मुंडारी शब्द) नाम देते हैं। आदिवासियों का विश्वास है कि पहाड़ में विशेष पत्थरों, पेड़ों, जलाशयों, कटे हुए पेड़ों के अवशेषों में शक्ति विद्यमान रहती है। उसे लोग बोंगा कहते हैं।

आदिवासियों का विश्वास है कि इन बोंगाओं को संतुष्ट नहीं करने पर उनके जीवन में परेशानी आ सकती है। आदिवासी समुदायों द्वारा प्रतिष्ठित सरना स्थान या जाहिर स्थान के रूप में जाना जाता है। जाहिर स्थान के निर्माण के समय एक सीमा बोंगा को भी प्रतिष्ठित किया जाता है। जिसका कार्य ग्राम सीमा के भीतर रहने वाले बोंगाओं को बाहर जाने से एवं बाहर के बोंगाओं को भीतर आने से रोकना होता है।

सरकारी स्तर पर आदिवासी कल्याण हेतु जो योजनाएं बनायी जाती है उनका ठीक से कियान्वयन न होने के कारण आदिवासियों को पूरा लाभ नहीं मिल पाता है। कृषि, जनसंख्या व शिक्षा का स्तर गिरा हुआ है जिस पर ध्यान देने की जरूरत है जिससे इनका कल्याण हो सके। आम आदमियों के बीच साक्षरता का 29 प्रतिशत है। स्त्री साक्षरता 10 प्रतिशत है। कुछ आदिम जनजातियाँ भूख, गरीबी और बीमारी से मर रही है। इन पर ध्यान देने की जरूरत है। झारखंड की पहाड़ियाँ जनजाति अब भी आदिम तरीके की खेती पर निर्भर हैं। लकड़ी बेचने और पारम्परिक कुरूवा खेती से उनकी आर्थिक उन्नति अवरूद्ध है।

आदिवासी महिलाएँ राँची शहर में नौकरानी के रूप में काम करती हुई देखी जा सकती है। अशिक्षा और गरीबी के कारण घरों के कामों में प्राप्त आय से अपने परिवार का खर्चा चलाती है। अस्सी के दशक में गरीबी के कारण झारखंड क्षेत्र से आदिवासी लड़कियों का पलायन शुरू हुआ। दिल्ली, मुम्बई और अन्य शहरों में जाने वाली लड़कियों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई । दिल्ली में घरेलू काम काज हेतु महिलाओं को लाने के लिए जोहार संगठन की स्थापना जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने की थी। बाद में देहली डोमेस्टिक वर्किंग फोर्म की स्थापना की गई। जो घरेलू नौकरानी के रूप में काम करने वाली महिलाओं की समस्याओं का ध्यान रखता था। धीरे–धीरे ऐसी घरेलू काम–काजी महिलाओं की संख्या दिल्ली में बढ़ने लगी और कई संस्थाओं ने व्यावसायिक प्रतिष्ठान खोलकर इन महिलाओं का शोषण किया। करीब 50 संस्थाएं दिल्ली में इस तरह की चल रही है। आदिवासी महिलाओं की यह स्थिति चिंतन करने योग्य है। घरेलू काम–काज के बहाने महिलाओं का यौन शोषण और खरीद–फरोख्त होती है। उनके परिवार की गरीबी का फायदा उठाकर ये लोग उनका शोषण करते हैं।

नागालैण्ड और मिजोरम में भी आदिवासी आन्दोलनों का स्वरूप देखने को मिलता है। मिजोरम में बोडो लोगों ने पी0टी0सी0ए0 की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1993 ई0 को आदिवासियों का अन्तरराष्ट्रीय वर्ष घोषित किया। इस वर्ष (1993) में ही आदिवासियों को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया । इस सिद्धान्त का तात्पर्य है कि लोगों को यह तय करने का अधिकार है कि उनके लिए सर्वोत्तम रास्ता क्या है। वैश्वीकरण के कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का गाँवों में प्रवेश हो चुका है इससे गाँवों में गरीबी और बेरोजगारी को बढ़ावा मिला है।

भारतीय वैदिक संस्कृति में आर्य व अनार्य का उल्लेख मिलता है। इनमें आदिवासी आर्योत्तर जातियों से है, जिन्हें संस्कृत साहित्य में असुर, निषाद, दस्यु, वानर और राक्षस के नाम से संबोधित किया गया है। ऐतरेय उपनिषद की रचना आर्येतर जाति के व्यक्ति ने की है। वाल्मीकि ने रामायण की रचनाकर कर यह सिद्ध कर दिया कि आदिवासी भी रचना धार्मिता में किसी से कम नहीं है। शबर स्वामी ने मीमांसा दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत की। ये उत्कल प्रदेश की शबरा आदिवासी जाति के ही पूर्वज थे। पंतजलि का योग दर्शन भी इससे प्रभावित जान पड़ता है, वह संस्कृत भाषा में है। शिव भी वस्तुतः आदिवासी देवता है। सिन्धुघाटी सभ्यता में पशुपतिशिव का उल्लेख है। शिव की वेश भूषा भी आदिवासी है। वे राक्षसों, असुरों, और दानवों के पूर्वज माने जाते है। सागर मंथन के समय इन्हे भकुआ समझ कर ही विष पीने को दे दिया जाता है। लेकिन उन्होनें विष को भी पी लिया। काली को भी आदिवासी शिव की पत्नी रूप में देखा जाता है। कृष्ण जो श्याम वर्ण के थे , वे भी आदिवासी समाज से संबंधित थे, क्योंकि आर्य तो गौरवर्ण के थे। समाज के लिए जाना–पहचाना सा लगता है।[6]

वामन पुराण के राजा बलि को भी हम आदिवासी राजा कह सकते है। किसी को आगे बढ़ता देख उसे रोकने के प्रयास करना आर्यजाति का ही काम है। राजा बलि को विष्णु भगवान के वामन अवतार का पता था, इसलिए वे सर्वस्व देने के लिए तैयार हो गये थे।

राजा दशरथ पुत्र हेतु चिंतित थे। पुत्र कामना हेतु पुत्रेष्ठि यज्ञ की सलाह दी जाती है। इस हेतु युवा तपस्वी श्रृंगी ऋषि को आमंत्रित किया जाता है। यज्ञ प्रसाद के रूप में तीनों रानियों को ऋषि खीर खिलाते हैं और रानियाँ गर्भवती होती है। तीनों रानियों से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न पैदा होते हैं। हिन्दी के मूर्धन्य कथाकार यशपाल जी ने भगवान के पिता के दर्शन कहानी में अनेक प्रश्न उठाये हैं। राजा दशरथ ने अपना वंश चलाने के लिए नियोग प्रथा से संतान प्राप्त की थी। इसके लिए उन्होनें युवा ऋषि श्रृंगी को चुना था।[7] एक भारतीय आचार्य के अनुसार श्रृंगी ऋषि एक आदिवासी थे और जिसका उपयोग अब भी कई आदिवासी जातियों में होता है।

वाल्मीकि रामायण में दो प्रकार के आदिवासी बताए गए हैं।

एक तो आदिवासी राक्षस या असुरः– जिसमें रावण आदि की गणना की जाती है। ये राम–रावण युद्ध में रावण का पक्ष लेते हैं। द्रविड़ भाषा भाषियों का अधिकांश भाग इस श्रेणी में आता है। दूसरे प्रकार के आदिवासी वानर कहे गए हैं जो श्रीराम की मदद करते हैं। रामायण के आदिवासियों में हनुमान का नाम सर्वोपरि है। सुग्रीव भी वानर जाति के ही आदिवासी थे। इसी वंश के नल–नील कुशल अभियंता थे जिन्होनें लंका जाने हेतु पुल का

निर्माण किया। निषादराज गुह और शबरी भी आदिवासी थे। योग्य सेनानायक के रूप में जामवन्त और सुषेण वैद्य का नाम भी उल्लेखनीय है।

आदिवासी वाल्मीकि की तरह व्यास भी अंशतः आदिवासी कहे जा सकते हैं। उनके पिता पाराशर थे और माता सत्यवती थी जो आदिवासी थी। कर्ण भी आदिवासी थे। पाण्डवों के वर्णशंकर होने की बात भी प्रचलित है। एकलव्य भी आदिवासी थे। द्रोणाचार्य को दोनों से उत्पन्न बताया है। किन्तु वे खुद आदिवासी थे। आर्य संरक्षण में पलकर और राज परिवार की छत्र–छाया में रहकर अपना अपना आदिवासीपन भूल गये।

महाभारत में दास–दासियों का उल्लेख हैं आंशिक रूप में उन्हें आदिवासी कहा जाना चाहिए। कालिदास ने मेघदूत में यक्ष का चित्रण किया है वह भी आदिवासी ही है। भारतीय संस्कृति आर्य–अनार्यो के संघर्ष की कहानी है।

संदर्भ

1. आदिवासी हिन्दू नहीं है। – वाहरू सोन वणे (1990 में पालधर जिला ठाणें में आदिवासी साहित्य सम्मेलन में पढ़ा गया अध्यक्षीय भाषण का अंश)
2. आदिवासी कौन :– डॉ0 विनायक तुकाराम (लेख)
3. म.फूले वाड.मयः संपादक धनंजयकीर मुबंई 1980 पृ. 416
4. कुचले जाते आत्म सम्मान के विरूद्ध (लेख) – महादेव टोप्पो (सं. रमणिका गुप्ता–आदिवासी कौन) पु.49–50
5. बास्ता सोरेन :– सरना पुस्तक से
6. भारतीय संस्कृति को आदिवासियों की देन (लेख) डॉ. रामदयाल मुडा ,गुप्ता –आदिवासी कौन)
7. यशपाल : मेरी प्रिय कहानियाँ, दिल्ली (राजपाल एंड सन्स) 1970 में संकलित)